(गाँव ज्ञान)

देसाली बस्ती: इदु मिश्मी लोक-जीवन और लोक-रंग

रेनू मिसो

भारतीय समाज की लोक-संस्कृति यहाँ के गाँव-कस्बे में बसी हुई है। भारतीय समाज को प्राणवान बनाने में यहाँ की ग्रामीण परंपरा, लोक-विश्वास एवं धार्मिक आस्था का योगदान महत्त्वपूर्ण है। भारतीयता की पहचान इन्हीं लौकिक तौर-तरीकों और रीति-रिवाजों से मिलकर बनती है। एम. फोस्टर के अनुसार, "लोक-संस्कृति को जीवन की ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जाता है जो एक क्षेत्र विशेष के गाँव, क़स्बा तथा नगरों के कुछ पास भी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में स्पष्ट होती है तथा लोक समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो लोक संस्कृति से बंधा होता है।" देसाली बस्ती का लोक-समाज एवं लोक-सांस्कृतिक जीवन इदु मिश्मी जनजाति से जुड़े हुए हैं। ध्यातव्य है कि आदिवासियों की जीवन-शैली एक ही तरह की होती है। वे अपनी मूल प्रकृति में प्रकृतिजीवी स्वभाव के हैं। कई लोग मानते हैं कि प्रकृति ही आदिवासियों को जोड़े रखती है। संपूर्णता में देखें तो प्रकृति पर हर मनुष्य निर्भर है और हर कोई प्रकृति से प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से जुड़ा हुआ है। आदिवासी से परे समुदाय के लोग भी प्रकृति के नियम कानून पर चलते और वे भी प्रकृति पर निर्भर रहते हैं।

सभी मनुष्यों के पूर्वज एक ही माने जाते हैं-'होमो सेपियन्स'। इसलिए मनुष्यों के जीवन स्तर भी एक जैसे हैं और उनकी आकृति, लक्षण एवं विशेषताएं भी बिल्कुल एक जैसे ही है। फर्क है तो उनके सामाजिक संरचना के कारण क्योंकि जब से मानव जाति का विकास हुआ है तब से मानवों द्वारा समाज की भी संरचना हुई है। इसलिए मानवों ने अपनी सुविधा अनुसार सामाजिक नैतिक मूल्यों और लोक-विश्वासों को स्थापित किया है। यही सामाजिक नैतिक मूल्य या कि लोक-विश्वास उस समाज-विशेष के मनुष्यों की पहचान और अस्मिता के निर्माण कार्य और विकास प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होते आए हैं। ये लोक-आधार इतने मजबूत या कहें ताकतवर हैं कि व्यापक समाज के व्यक्ति और संकीर्ण समाज के व्यक्ति में अंतर पैदा हो जाते हैं।

देसाली बस्ती के लोक-जीवन में मुख्य समस्या यही है कि वे अब तक जागरूक नहीं हुए हैं। इस बस्ती के बुजुर्गों को बहला-फुसलाकर मूर्ख बनाया जाता है और उन्हें लगता है कि पैसा उनकी फौरी जरूरत की पूर्ति के लिए अहम है। इसके उलट वे ज्ञान के महत्त्व को नहीं समझ पाते हैं जबकि ज्ञान अथवा शिक्षा मूल्यवान है। देसाली बस्ती के लोगों को आज भी अँधेरे में रखा जा रहा है क्योंकि लोग जितना शिक्षा से दूर रहेंगे अपने हक़-अधिकार के लिए उतनी ही कम बातें करेंगे जिसका फायदा उन चंद नेताओं को होगा जो अपने लाभ के लिए ग्रामीणों को मोहरा बनाते हैं या चंद सिक्कों के लिए उनके मत को खरीद लेते हैं। इसलिए खंडहर में तब्दील स्कूल के पुनर्निर्माण को अनदेखा किया जा रहा है। ऐसा इसलिए भी आसानी से हो पाता है कि ग्रामीण लोग अपने काम में अति-व्यस्त होते हैं और उनका अधिसंख्य काम कृषि से जुड़ा है जो सालों भर चलता-रहता है। देखा जा सकता है कि देसाली बस्ती के अधिकतर लोग किसान हैं, वह किसी प्रकार की दुनियादारी से कोई वास्ता नहीं रखते हैं। वे दुनियाभर की ख़बरों से भी बेखबर रहते हैं और किसने कितना तरक्की कर लिया हैं,

उस बात से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। अधिकतर युवा वर्ग कक्षा 10वीं में विफल होने वाले लोग हैं। शिक्षा से कट चुके युवाओं के सामने आगे बढ़ने के रास्ते लगभग बंद हो चुके हैं और उन्हें कोई विकल्प नजर नहीं आता है। इसलिए कभी-कभी वह लोग गलत कदम भी उठा लेते हैं। इस बस्ती में अब तक ऐसा माहौल नहीं बना है कि पढ़ाई करने वाले लोगों को यहाँ का समाज प्रोत्साहित कर सके बल्कि इसके ठीक विपरीत हतोत्साहित किया जाता है। लोग कहने लगते हैं कि पढ़ाई करके तुम लोगों में से कितने लोग कामयाब हो पाएंगे। उनकी ऐसी धारणा बन चुकी है कि पढ़ाई करके भी नौकरी नहीं मिली तो पढ़ाई ही बेकार है। वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने या इस अर्जित ज्ञान को महत्त्व देने वाले बहुत ही कम लोग हैं। जो लोग ज्ञान को कमाई का साधन मानते हैं या वहीं तक सीमित कर देखते हैं; उनका भी दोष नहीं है। इन सब चीजों का सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद ऐसा प्रतीत हुआ है कि देश का एक शिक्षित वर्ग चाँद पर पहुँच चुका है और दूसरा वर्ग अभी अपनी बुनियादी शिक्षा के लिए लड़ रहा है जो उसे पूरी तरह अब भी नसीब नहीं हुआ है। गाँव में रोशनी है तो क्या हुआ संज्ञानात्मक और आलोचनात्मक विकास के स्तर पर उनकी समझ या बुद्धि वैज्ञानिक बिल्कुल नहीं है। वे एक ऐसे अँधेरे से घिरे हैं जहाँ रौशनी पहुँचने के रास्ते ही मानों बंद है। वैसे यह मानी हुई बात है कि हर मनुष्य को इतनी शिक्षा जरूर मिले ताकि वे किसी के बहकावे में न आ सके और अपनी बुद्धि का उपयोग कर सके, साथ ही अपने अस्तित्व को समझ सके।

इस संपूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही एक मात्र ऐसा जीव है जो अपना भला-बुरा सोच सकता है या अपने बुद्धि-विवेक के आधार पर अवसरानुकल निर्णय ले सकता है। दरअसल, उसकी बुद्धि विकसनशील है। इसीलिए तो मनुष्य को मानव-कल्याण और प्रकृति की संरक्षा की जवाबदेही उठानी पड़ती है। या मनुष्य का गुणधर्म ही है कि वह एक मार्गदर्शक की भूमिका में अपने चेतना को सकारात्मक से नकारात्मक दिशा में मोड़ सकता है, लेकिन आज मनुष्य स्वार्थवृत्ति में फंसकर अपनी ही बुद्धि और विवेक का गला घोंटता दिख रहा है।

यह संकट अरुणाचल प्रदेश के देसाली बस्ती पर भी गहराया हुआ है। इदु मिश्मी लोक-समाज का जीवन बदलाव के मुहाने पर है और भाषा के स्तर पर विलुप्ति का संकट मंडरा रहा है। यह भले ही अब भी बचे हुए हैं तो इसलिए कि बस्ती में बुजुर्ग अभी बचे हुए हैं। उन लोगों के कारण लोक जीवन की परंपरा और शैली अभी भी सुरक्षित है। ग्रामीण बुजुर्ग लोगों के जीवन दर्शन में लोक से संबंधित दर्शन तो मिल ही जाते हैं; साथ ही साथ उनकी स्मृति के माध्यम से लोक-साहित्य को भी जान-समझ सकते हैं। ग्रामीण इलाके दूर-दराज स्थित होने के कारण आधुनिकता के प्रभाव में या उसकी जकड़ में नहीं आ पाए हैं। इसलिए उन्होंने अपने वंश को अपने ही जीवन-शैली के अभ्यास और अनुभव से पाला-पोसा है। इसके उलट वर्तमान पीढ़ियों को हिंदी भाषा बोलने में ही सुख की अनुभूति प्राप्त होती है। दूसरी तरफ यह है कि कुछ साल पहले देसाली बस्ती जो कि पूरी तरह से किसी धार्मिक संक्रमण के शिकार नहीं हुए थे आज इस बस्ती में ईसाई धर्म की पहुँच बढ़ चुकी है। इस संक्रमण के कारण इदु मिश्मी लोग बहुत ज्यादा मात्रा में ईसाई धर्म में रूपांतरित हो रहे हैं। यह चिंता का विषय इसलिए भी है, क्योंकि जो लोग कल तक अपने पूर्वजों के जीवन दर्शन और जीवन-शैली का निर्वाह कर रहे थे वे अब ईसाई धर्म में रूपांतरित हो रहे हैं या हो चुके हैं। इसका कारण स्पष्ट है और जो धर्मांतरण करने वाले लोग हैं वे इन स्वदेशी धर्म का पालन करने वाले लोगों के मन-मस्तिष्क में किसी धर्म-विशेष से संबंधित ऐसी-ऐसी बातें उनमें भर देते है कि वे अंततः उस पर आँख मूँद कर विश्वास करने लगते हैं और अपनी मौलिक सामाजिक-

परंपरा से कट जाते हैं या उसको गैर-जरूरी समझने लगते हैं। रोजमर्रा के जीवन में ईसाई धर्म द्वारा संचालित सामाजिक व्यवस्था को माना जाने लगा है, इसलिए ग्रामीण लोगों के सोच-विचार तेजी से बदल रहे हैं। धर्मांतरित लोग नए धर्म के प्रति वफादार होने लगतें हैं। यह प्रक्रिया अनवरत घटित होने के कारण धीरे-धीरे लोक-संस्कृति और लोक-समाज की स्वदेशी परंपरा लुप्तप्राय होने लगती है या उनका महत्त्व समय के साथ कम होता चला जाता है। ऐसे लोग अपनी मूल वंश या जनजाति के समारोहों में भी शामिल नहीं होते हैं और अधिक चिंता की बात यह है कि वे लोग अपने वंश को ईसाई धर्म की जीवन-शैली के अनुकूल इस कदर ढाल लेते हैं कि उसमें इदु मिश्मी की लोक परंपरा या लोक संस्कृति कहने लायक कुछ भी नहीं बच पाता है।

आज कल के पढ़े-लिखे लोग ईसाई धर्म से इसलिए जुड़ रहें हैं क्योंकि उनको आर्थिक सहायता मिलती है और उन्हें भौतिक लाभ के हर तरह के अवसर मिलते हैं। इसी के साथ विदेश जाने तक का अवसर दिया जाता है। इस प्रकार के अवसरों का लुत्फ़ उठाने के लिए लोग इस धर्म से जुड़ रहे हैं। जहाँ पहले समाज को व्यवस्थित रूप में रखने के लिए उसे समाज-विशेष के नीति-नियमों का पालन करना अनिवार्य होता था। आजकल धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के चलते अब पहले जैसी बाध्यता अथवा कठोर बंधन नहीं रह गया है। यानी अब सब के लिए एक ही कानून लागू है। इसलिए स्थानीय नियम या बंदिश महत्त्वहीन हो चुके हैं। आज भी स्थानीय नियम का वही लोग अनुपालन कर रहें हैं जो अपने धर्म से गहरे जुड़े हैं या उनके लिए पूर्णतः समर्पित हैं। ऐसे लोगों के द्वारा ही लोक-समाज में संस्कृति और परंपरा की मूल्यवर्द्धक बातें परिलक्षित होती हैं; लेकिन कुछ-कुछ ऐसी भी रवायत देखने को मिलती है जो पक्षपाती और अन्यायपूर्ण हैं, इसलिए ऐसी चीजें भले ही लोक-आचरण या नैतिक आग्रह से ही क्यों न जुड़ी हुई हों; उनको आज के समय में बाहर निकाल देना ही बेहतर है। देसाली बस्ती के इदु मिश्मी समुदायों के लोक-समाज को निम्नलिखित रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

रहन-सहन-

जो लोग बस्ती में रह रहे हैं वे लोग बहुत ही साधारण ढंग से जीवनयापन करते हैं। खासकर बूढ़ा-बूढ़ी लोगों की ख्वाहीश लंबी-चौड़ी नहीं रहती है। वे केवल अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहते हैं। खेती से घर और घर से खेती करने में ही जिंदगी गुजार देते हैं लेकिन उनके ठीक विपरीत आज की पीढ़ियों में तीव्र बदलाव परिलक्षित होता है। आज के युवा जरूरत से ज्यादा ख्वाहिश रखते हैं कई-कई बच्चे तो अपने अभिभावक को परेशान कर देते हैं। नई पीढ़ी के लोग पदार्थवादी दुनिया से प्रभावित होते जा रहे हैं, इसलिए वे अपने जीवन में अधिक ख्वाहिशों की कामना करके गलत कदम भी उठाने लगते हैं। इन बातों से इतर देखें तो देसाली बस्ती में जब भी लोगों की जरूरत पड़ती है, बस्ती के लोग एक दूसरे का सहारा बनते हैं। किसी के घर में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो लोग ख़ुशी-ख़ुशी उनकी सहायता करते हैं। किसी के घर के जल जाने से भी लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं।

स्त्री-पुरुष-

लैंगिक पक्षपात तो पहले से ही समाज में मौजूद रहे हैं, क्योंकि सामाजिक संरचना ही पितृसत्तात्मक है। यह बात सिर्फ देसाली बस्ती पर लागू नहीं होती है, बल्कि स्त्रियों को पुरुष के समान किसी भी देश में नहीं देखा जाता है। सांविधानिक रूप में समानता स्थापित तो किया गया है, लेकिन प्रत्येक लोगों के मन-मष्तिस्क

में समानता की चेतना डालना संभव नहीं है। आज के आधुनिक युग में समानता की बात बढ़-चढ़ कर की जाती है लेकिन पूर्ण रूप से समानता अभी तक आधिकारिक रूप में प्राप्त नहीं हुई है। देसाली बस्ती के लोग अभी तक इस लैंगिक समानता को लेकर जागरूक नहीं हैं, इसलिए स्त्रियों का जीवन आज भी दयनीय स्थिति में है। घर-परिवार चलाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों की आपसी-समझ की जरूरत होती है लेकिन कहीं-न-कहीं से समाज पुरुषों के पक्ष में होता है। ये सब चीज किसी के भी वैवाहिक जीवन में देखी जा सकती हैं।

इदु मिश्मी लोक-कला-

कला को लेकर दुनिया भर में विभिन्न परिभाषाएं गढ़ी गयी हैं। कला मनुष्य की आंतरिक गति-संगति आधारित विभिन्न प्रवृत्तियों की बाहरी अभिव्यक्ति है। दुनिया भर में कला का स्वरूप अलग-अलग है, क्योंकि जिस जगह में जो चीज एक उपलब्धि के रूप में विकसित हुई है या विरासत में मिली है वहां के लोगों ने उसका महत्त्व जान लिया है और उनको उपयोग में लाना सीखा है। उदाहरण के तौर पर देखें तो जिस प्रकार अन्य समुदाय के लोगों ने मिट्टी का प्रयोग करके मटका बनाना सीख लिया उसी प्रकार आदिवासी समुदाय के लोगों ने भी बांस का प्रयोग करके टोकरी बनाकर उनका अपने दैनंदिन कार्य में प्रयोग करना सीख लिया है। देसाली बस्ती में पुरुष लोग बांस का प्रयोग करके अनेक चीजें बनाने में माहिर होते हैं तो वहीं महिलाएं बुनाई के काम में माहिर होती हैं। लेकिन यह लोक कला अब लुप्त होने वाली हैं, क्योंकि स्कूल में ये सब नहीं सिखाया जाता है। वर्तमान में उस चीज को पढ़ाई के रूप में पढ़ना पड़ता है जो अलग समुदाय की भाषा और संस्कृति की देन है। इसलिए आजकल पढ़े-लिखे लोग लोक कला में ध्यान नहीं दे रहे हैं और न ही इसका महत्त्व जान पा रहे हैं। मगर इदु मिश्मी लोक कला का सही तरीके से उपयोग करना वे सीख लें तो यह बहुत उपयोगी हो सकता है। इदु मिश्मी के त्यौहार को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

रेह-त्यौहार-

मनुष्यों ने अपने ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया में सामाजिक संरचना की कलात्मक और रचनात्मक बनावट द्वारा अपनी खुशियों को अभिव्यक्त करने का तरीका ढूंढ़ निकाला है। आदिवासी समाज में त्यौहार इसी का परिणाम है। एक विशेष त्यौहार का नाम लेने पर उस विशेष समुदाय का ज्ञात हो जाता है। इसलिए त्यौहार किसी विशेष समुदाय के सामाजिक-संस्कृति से जुड़ा हुआ होता है। वैसे ही रेह-त्यौहार का नाम लेने पर इदु मिश्मी समुदाय का बोध होता है। इदु मिश्मी लोग रेह-त्यौहार को दो तरह से मनाते हैं- एक व्यक्तिगत रेह और दूसरा केंद्रीय रेह। वास्तव में इदु मिश्मी समुदाय के यहाँ एक ही रेह हुआ करता था, व्यक्तिगत रेह जो कि लोग अपने घर के और स्वयं घर के मालिक की सुख-समृद्धि के लिए मन्नते मांगते थे। यह सब ओझा (इगु) के द्वारा ही किया जाता था। आज भी अच्छा या बुरा दोनों का परिणाम इगु के ऊपर आश्रित रहता है। इस व्यक्तिगत रेह उत्सव का प्रतिष्ठापक कौन है और क्यों मनाये जाने लगे? किस तरह से इसका निर्माण किया गया? इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, बल्कि ये इदु मिश्मी लोक-समाज के एक अंग बने हुए हैं। इन मान्यताओं को लोक ने ही गढ़े थे। ये इदु मिश्मी के पूर्वजों द्वारा निर्माण किया गया एक प्रमुख पर्व-त्यौहार है जिनकी उनकी लोक-संस्कृति देसाली बस्ती से जुड़ी हुई है। रेह त्यौहार परिवर्तनशील रहे हैं और समय के साथ थोड़ा-बहुत बदलाव होता रहा है। व्यक्तिगत रेह उत्सव 5 दिन के लिए आयोजन किये जाते हैं। इसे आयोजित करने के लिए 10 या 20 साल पहले आयोजक यानी घर मालिक (इदु मिश्मी के शब्द में आयोजक को 'रेता' कहते हैं) तैयारी में

लग जाते हैं। जहाँ-जहाँ रेह आयोजन किये जा रहे हैं उस जगह जाकर आयोजक के वहां धन देना पड़ता है और आयोजक धन और व्यक्ति विशेष के नाम को अभिलिखित रूप में रखता है। धन किसी भी चीज के रूप में हो सकते हैं- सूअर, मिथुन, इकट्ठे मछली, जंगली चूहा, चिड़िया, पैसा इत्यादि। धन देते समय ही धन का हिसाब-किताब किया जाता है और जब धन देने वाला व्यक्तिगत रेह आयोजन करता है तब पूर्व रेह आयोजक को वर्तमान आयोजक के यहाँ धन वापस करना पड़ता है; बाकी चुकता करना पड़ता है (इदु मिश्मी शब्द में इसे 'आदा' कहते हैं)। जब रेह आयोजन के लिए आयोजक निर्णय ले लेता है, तब एक महीने पहले अपनी सभी रिश्तेदारों के यहाँ निमंत्रण भेज दिया जाता है। यह निमंत्रण पत्रों द्वारा नहीं, बल्कि रस्सी में गांठ बनाया जाता है और कितने दिन के अंतर्गत रेह आयोजन किया जायेगा उतनी गांठ बनाकर निमंत्रण भेज दिया जाता है। एक गांठ एक दिन के समान होता है। (इदु मिश्मी भाषा में इसे 'ताए' कहते हैं)

रेह समारोह के प्रथम दिन को 'अन्द्रोपू' कहा जाता है। इसी दिन ओझा का प्रवेश होता है और दूसरे दिन को 'एयानी' कहते हैं। इस दिन दूर के रिश्तेदार लोगों का आना प्रारंभ होता है। यह प्रक्रिया तीसरे दिन के रात तक चलती है। तीसरे दिन को 'एंयानी' कहा जाता है। इसी दिन में 'एम्बो' यानी की दूर से आए हुए रिश्तेदार लोगों को पैसे दिए जाते हैं। चौथे दिन को 'इलिउमुनी' कहा जाता है। इस दिन मेहमानों को विदा किया जाता है और अंतिम पांचवे दिन को 'अरुहा' कहा जाता है। कबीले के सब लोग मिलकर पार्टी करते हैं। इस व्यक्तिगत रेह के माध्यम से मनुष्यों को परखा जाता था, जिसने भी रेह में ज्यादा मात्रा में मिथुन और सूअर काटा है उनके नाम को ऊँचे स्तर पर रखा जाता था और उन्हें 'एहो' यानी धनी व्यक्ति माना जाता था। इसी प्रकार जिस किसी के पास भी ज्यादा मिथुन हैं, उन्हें धनी व्यक्ति में गिना जाता था। इसलिए व्यक्तिगत रेह उत्सव इदु मिश्मी समुदाय के लोक समाज और लोक-संस्कृति का एक अंग है। व्यक्तिगत रेह के माध्यम से व्यक्ति यानी आयोजक अपने रिश्तेदरों से मिलता है और उसके कितने रिश्तेदार हैं उनकी खोज-खबर भी ले लेता है। अब तक के लिए व्यक्तिगत रेह आयोजक में दिबांग वैली के पूर्व विधायक का अभिलेख सबसे ज्यादा है। उन्होंने 9 बार व्यक्तिगत रेह आयोजन किया था। उनका नाम तद्रे तचो है। वे दिबांग वैली जिले के सर्वप्रथम विधायक के रूप में जाने जाते हैं और दिबांग वैली जिले को प्रतिष्ठित करने में उनका सबसे ज्यादा योगदान माना जाता है।

केंद्रीय रेह उत्सव-

केंद्रीय रेह उत्सव के प्रतिष्ठापक नेता इता पुलु को माना जाता है। इता पुलु द्वितीय विश्व युद्ध के समय में कुली का काम करते थे। 1953 में उन्हें राजनीतिक दुभाषिया के रूप में संयुक्त किया गया और उन्होंने एजेंसी परिषद सदस्य के रूप में कार्य किया। 1967 ई. को रोइंग में उन्होंने सर्वप्रथम केंद्रीय रेह त्यौहार का आयोजन किया था तथा उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के हर गाँव के इदु मिश्मी व्यक्तियों को आमंत्रित किया। इस केंद्रीय रेह उत्सव के सर्वप्रथम मुख्य अतिथि चो. खामुम गोहन थे। 1975 ई. में नेता इता पुलु को एक विधायक के रूप में चुना गया और उन्हें इदु मिश्मी समुदाय का प्रथम विधायक माना जाता है। 1977 ई. में वे राजनीति छोड़कर समाज सेवा में लग गए थे। और 29 सितंबर, 2002 में उनका निधन हो गया। केंद्रीय रेह उत्सव दो दिन के लिए मनाया जाता है। यह व्यक्तिगत रेह की तरह नहीं होता है। यहाँ मुख्य अतिथि को आमंत्रित किया जाता है और उनका स्वागत किया जाता है। इसको मनाने के लिए चंदा जमा किया जाता है। इस तरह देखा जाये तो जहाँ

व्यक्तिगत रेह में एक अकेले की मेहनत होती है और उसका श्रेय भी उस व्यक्ति विशेष को ही जाता है। मगर केंद्रीय रेह उत्सव का श्रेय पूरे समुदाय को जाता है।

'कैमे हा' त्यौहार-

यह इदु मिश्मी समुदाय का एक अनुष्ठानिक त्यौहार है जो कि फसल की कटाई के समय में मनाया जाता है। फसल पकने के बाद सर्वप्रथम घर पर नई फसल लाई जाती है। जिस दिन नई फसल लायी जाती है, उस दिन फसल की पूजा की जाती है। ऐसे ही फसल को पूजने की परंपरा प्रत्येक आदिवासी समुदाय में देखने को मिलती है। लेकिन उस पारंपरिक त्यौहार को मनाने के लिए अलग-अलग मान्यताएं गढ़ी गई होती हैं। इदु मिश्मी समुदाय के 'कैमे हा' त्यौहार से संबंधित यह मान्यता है कि जिस दिन नई फसल काटी जाती है, उस दिन घर के लोग नए चावल खाने के लिए जितना आनंदित और उत्साहित रहते हैं उतना ही आनंदित और उत्साहित घर के भूत (खिनु मेको) भी रहते हैं। इस त्यौहार में पूरे परिवार के साथ खाना खाया जाता है। प्रयास यह किया जाता है कि जितना हो सके घर के पूरे सदस्य की मौजूदगी में इस त्यौहार को मनाया जाए। अगर किसी कारणवश उस दिन घर का कोई सदस्य उपस्थित नहीं हो पाए तो उस सदस्य के नाम खाना निकालकर रख दिया जाता है। ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि घर के किसी भी सदस्य की अनुपस्थिति में उसका हिस्सा नहीं देने पर घर का भूत (खिनु मेको) गुस्सा हो जाता है और उनका गुस्सा होना घर के लिए अशुभ होता है। इसलिए उसके हिस्से को निकालकर रख देना ही शुभ माना जाता है। इसके बाद उस खाना को कोई भी सदस्य खा सकता है। बस भूत को संबोधित करने हेतु यह अनुष्ठान किए जाते हैं। यह आज की पढ़ी-लिखी पीढ़ी की दृष्टि से विचार करने पर अंधविश्वास लगता है; मगर यही परंपरा पूरे परिवार को एकजुट करने या एकसूत्र में बाँधने का काम करती है और घर के किसी सदस्य की अनुपस्थिति का एहसास भी कराता है। इस त्यौहार का दिन बहुत ही शुभ होता है। इस दिन फसल को लेकर अनाप-सनाप बातें नहीं करनी होती है। ऐसी बुरी बातें करने पर खेती की देवी (मानु) नाराज हो जाती हैं और फसल खराब होना लाज़िम है। इस त्यौहार में एक रात निषेध माना जाता है। उस दिन खाना खाने के बाद अन्य चीजों को खाने से सख्त मना किया जाता है तथा खाने को लोगों को परोसने से पहले थोड़ा-सा खाना निकालकर 'ऐ' यानी लो कहकर भूतों को संबोधित किया जाता है। उसके बाद ही लोगों के थाल में खाना परोस दिया जाता है। इस दिन विशेषकर खाना के साथ कुछ भी मांस होना आनिवार्य माना जाता है। कुछ भी मांस हो सकते हैं- जैसे मछली, मुर्गी आदि। यह भी मान्यता है कि आज घर पे 'कैमे हा' होगा। ऐसी झूठी जुबान नहीं देनी होती है। इस त्यौहार को लेकर मज़ाक नहीं किया जाता है और अगर एक बार जुबान दे दिया तो उससे नहीं मुकरना होता है। ऐसा भी माना जाता है कि झूठी दिलासा देते रहने से भूत की भी अपेक्षा बढ़ जाती है और अगर उसकी अपेक्षा पूरी नहीं हुई तो घर के लोगों पर भूत का काला साया पड़ सकता है और यह घर परिवार के लिए प्रतिकूल माना जाता है। इसलिए इसको लेकर छेड़खानी नहीं की जाती है।

अन्य अनुष्ठान-

मानव जाति का विकास आधुनिक परिघटना नहीं है। यह आदिम काल से शनै:-शनै: आज तक पहुंची है। समाज की संरचना करते समय मनुष्यों ने अपने-अपने समाज के लिए अनुष्ठानों का आयोजन और उनकी प्राण-प्रतिष्ठा की है। इसलिए अनुष्ठान संबंधी मान्यता लोक-परंपरा से ही चली आ रही है। इसमें कुछ-कुछ

अंधविश्वास भी हो सकते हैं और वर्तमान परिस्थितियों में ये परंपरा के उलट भी हो सकती है। ऐसे ही लोक-प्रचलन में शामिल इदु मिश्मी जनजाति के कुछ प्रमुख अनुष्ठान निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है:-

1. जब पुरुष जंगली जानवरों का शिकार करते हैं- जैसे मिश्मी ताकिन, हिरण, बंदर, भालू आदि; तो शिकार करके घर लाने पर रोक होती है। इस वर्जना को मानना पड़ता है। खासकर जब स्त्रियों के मासिक धर्म (menstruation) हो रहे होते हैं तो स्त्रियों को खाना बनाने की अनुमति नहीं होती है। घर ले आने की स्थिति में भी जब तक घर पर जानवरों का मांस रहेगा तब तक घर के सदस्यों को कई तरह की वर्जना को मानना पड़ता है। शिकारकर्ता को इस वर्जना को कम से कम 5 दिन तक अलग से मानना पड़ता है।
2. प्रत्येक जानवर को मारने के बाद एक प्रकार की पूजा की जाती है। स्थानीय भाषा में 'आपू' कहते हैं। यह अभ्यर्थना एक तरह से इष्ट को धन्यवाद देना होता है।
3. स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग जानवरों के मांस होते हैं; लेकिन पुरुष स्त्री के हिस्से में मिले सभी तरह के मांस खा सकते हैं मगर पुरुष को जिन-जिन मांस को खाने की छूट मिली है उन्हें स्त्रियाँ नहीं खा सकती हैं। मगर आजकल लोग अपनी मर्जी से खाने लगे हैं। मिथुन, मुर्गे, सूअर आदि पुरुष के ही खाने के मांस माने जाते थे लेकिन आजकल स्त्रियां भी इनको खाने लगी हैं। आज जंगली जानवर को छोड़कर पालतू किस्म के जानवरों के सभी मांस सब के खाने के लिए सामान्य मांस की तरह प्रयोग होता है।
4. यहाँ तक की रहने के लिए भी अलग-अलग कमरा हुआ करता था। जंगली जानवर के मांस को पुरुष जिस जगह रहता है, उसी जगह वह उनका भोजन कर लेता है। उस जगह को स्थानीय भाषा में 'आलोंगा' कहते हैं और स्त्री की जगह को 'अपिनोको' कहते हैं।
5. बच्चा जन्म होने पर ओझा किया जाता है उसको 'आ ताएँ' कहते हैं। इसमें इगु द्वारा बच्चो के जीवन की सुख-समृद्धि और लंबे जीवन के लिए किया जाता है। इसके बिना बच्चे के जन्म को अधूरा माना जाता है और बच्चे के जन्म होते ही 5 दिन होने से पहले ही बच्चे का नामकरण करना अनिवार्य माना जाता है। नहीं तो ऐसी मान्यता है कि 'खिनु' भूत उसका नामकरण करके बच्चे को ले जाते हैं।
6. पति और पत्नी की मृत्यु होने पर भी 10 महीने के लिए अनुष्ठानों को मानना पड़ता है। अगर पति की मृत्यु हो गई तो पत्नी को मानना पड़ता है और पत्नी की मृत्यु हो गई तो पति को मानना पड़ता है।
7. अंतिम संस्कार समारोह चार या पांच दिन के लिए मनाये जाते हैं। इसके भी अलग-अलग प्रकार होते हैं। जैसे- आत्मा हत्या, दुर्घटना के कारण मरने वालों के लिए अलग से अनुष्ठानों का पालन किया जाता है और जो बीमार होकर मरते हैं उनके लिए अलग से अनुष्ठानों का पालन किया जाता है। इस समारोह में भी ओझा के बिना अनुष्ठान को अधूरा माना जाता है क्योंकि इगु ही है जो मनुष्य और आत्मा के बीच माध्यम बनता है और मरने वाले की आत्मा को आत्माओं की दुनिया में पहुँचाने का काम करता है। ओझाई करते समय आत्मा के संदेश को मनुष्य तक इगु द्वारा ही लाया जाता है। इगु ही वापस बताता है कि आत्मा ने ये या वो बातें कही हैं। ऐसी मान्यता है कि ओझाई अच्छे से नहीं करने पर आत्मा वापस घर लौट आती है और यह घर वालों के लिए अशुभ माना जाता है, इसलिए बुरी आत्मा को घर वापस नहीं आने देने के लिए ओझाई किया जाता है। इगु ही आत्मा के साथ संवाद करके बताता है कि आत्माओं की दुनिया ही अब उसका घर है तथा आत्मा को यह भी बताया जाता है की पूर्व परिवार और घर से उसका कोई वास्ता नहीं है।

8. ओझा के कई प्रकार होते हैं। जैसे एक रात के लिए किसी बीमारी के लिए किए जाने वाले को 'आई' कहते हैं, दूसरा घर पर बहुत-सी चीजों से जुड़ी दुर्घटनाएं घटते रहने पर इन चीजों से बचने के लिए भी 2 दिन के लिए ओझा किया जाता है, उसे 'तानो' कहते हैं। फिर छोटा-मोटा पंद्रह-दस मिनट के लिए आवश्यकतानुसार भी ओझा किया जाता है उसे 'कालीवु' और 'मचिवु' कहते हैं।

देसाली बस्ती का लोक-जीवन उपर्युक्त प्रक्रियाओं और चरणों से गुजरकर वर्तमान स्वरूप में विद्यमान है। देसाली बस्ती के लोग अब तक बहुत-सी चीजों से अनजान हैं बल्कि कई-कई अब भी ऐसे सोच-विचार करने वाले लोग हैं जो मर्द और औरत के बीच स्टीरियोटाइप/रूढ़िबद्ध धारणा रखते हैं। अब तक अपने ही समाज के बने-बनाये कानून जो कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पालन कर रहे हैं और घरेलू-हिंसा तो रोजाना किसी-न-किसी के घर में होती ही रहती है। रोजमर्रा के जीवन में देसाली बस्ती की वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन इसी तरह से किया जा सकता है। देसाली बस्ती का लोक-जीवन अब तक अँधेरे में है। एक तरफ दुनिया भर में आधुनिकता की होड़ मची हुई हैं। मनुष्य ने इतनी तरक्की कर लिया है कि वैज्ञानिकों द्वारा बनी मशीनों को चाँद ग्रह के हर कोने में भेजा जा रहा है। अपने देश को दूसरे देश के मुकाबले में कम आंकने नहीं देने वाले लोग भी हैं। लेकिन भारत देश के कई कोने में ऐसी बस्तियां भी हैं, जहाँ लोग शिक्षा के तौर पर बुनियादी ज्ञान भी नहीं पा सकते हैं क्योंकि वहां की स्कूल व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी है। दु:खद यह है कि स्कूल की जो इमारत मौजूद है, उस जगह गाय, बैलों और बकरियों का आश्रय स्थल बन चुका है। गाँव के स्कूल खंडहर में तब्दील हो गए हैं। इस चिंताजनक स्थिति से परिचित स्थानीय नेता भलीभांति परिचित हैं, लेकिन इन नेताओं के मस्तिष्क में ये संवेदनशील विचार कभी नहीं आते हैं कि शिक्षा जनसमाज में बदलाव लाने का मुख्य हथियार है और इस ओर ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है।

*(**लेखकीय परिचय :** रेनू मिसो राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8794256568, ई-मेल : renumiso4728@gmail.com)